

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 4: ऋषभदेव की महिमा

14 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



जन्म से ही दिव्यता के लक्षण धारण किए, भगवान् ऋषभदेव तेजस्वी महिमा में पृथ्वी पर राज्य करते हैं — स्वयं परम भगवान्, जो एक मर्त्य के समान शासन करते हुए संसार को अपने ही उदाहरण से धर्म का मार्ग सिखाते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्जम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में सन्तानहीन राजा नाभि ने योग्य पुत्र के लिए भगवान् विष्णु की आराधना की, और भगवान् ने — अपने समान किसी को न पाकर — स्वयं रानी मेरुदेवी के गर्भ में अवतरित होने का वचन दिया। पंचम स्कन्ध का यह चौथा अध्याय उसके पश्चात् की कथा कहता है: उस दिव्य शिशु,

भगवान् ऋषभदेव की अद्भुत महिमा। जन्म से ही उन्होंने भगवत्ता के अमिट लक्षण धारण किए; उनके पिता ने उन्हें “सर्वश्रेष्ठ” नाम दिया, उन्होंने अपने ही सामर्थ्य से वर्षा भेजकर इन्द्र का दर्प चूर किया, उन्होंने सौ श्रेष्ठ पुत्रों को जन्म दिया — जिनमें ज्येष्ठ भरत के नाम पर इसी भूमि का नाम पड़ा — और स्वयं परम भगवान् होते हुए भी वे एक साधारण मनुष्य के समान राज्य करते रहे, केवल इसलिए कि संसार को अपने ही उदाहरण से सन्मार्ग सिखा सकें। यह अध्याय मानव-कर्तव्य में लिपटी दिव्यता का एक चित्र है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 4 (चतुर्थ अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: भगवान् ऋषभदेव की दिव्य महिमा
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह समस्त संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित शौनक आदि ऋषियों की सभा को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: राजा नाभि का राज्य (अजनाभ, जो आगे भारतवर्ष कहलाया), और ब्रह्मावर्त, जहाँ भगवान् ऋषभदेव शासन करते हैं और अपने पुत्रों को सम्बोधित करते हैं
- केन्द्रीय विषय: भगवान् ऋषभदेव के दिव्य लक्षण और महिमा; उनका नामकरण; वर्षा भेजकर इन्द्र के दर्प का शमन; राजा नाभि का हर्ष और उनका बदरिकाश्रम-गमन; भरत आदि सौ पुत्र; और स्वयं परम भगवान् होते हुए भी अपने उदाहरण से धर्म सिखाने वाला उनका आदर्श शासन
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 4, श्लोक 1–19
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

पंचम स्कन्ध का तृतीय अध्याय भगवान् के रानी मेरुदेवी के अन्तःपुर में अवतरण के साथ समाप्त हुआ। राजा नाभि के यज्ञ और ऋत्विजों के विनम्र स्तवन के उत्तर में, और ब्राह्मणों के वचन को मिथ्या न होने देने के लिए, परम भगवान् ने स्वयं नाभि के पुत्र बनने का संकल्प किया था, और संसार को वैराग्य का मार्ग सिखाने के लिए शुद्ध सत्त्व के स्वरूप में प्रकट हुए थे। वही दिव्य शिशु भगवान् ऋषभदेव हैं। अब यह अध्याय उनके बाल्यकाल और उनके शासन पर खुलता है, उस भगवान् की महिमा को उद्घाटित करते हुए जिन्होंने एक भक्त के पुत्र-रूप में जन्म लेना स्वीकार किया।

जन्म से ही दिव्यता के लक्षण

अपने जन्म के ही क्षण से भगवान् ऋषभदेव भगवत्ता के अमित चिह्न धारण किए हुए थे। उनका स्वभाव समता, अन्तःकरण और बाह्य इन्द्रियों के संयम, वासना से विरक्ति, सार्वभौम प्रभुत्व और सर्वत्र पूर्णता से देदीप्यमान था — और यह महिमा प्रतिदिन बढ़ती गई। इसे देखकर मन्त्री, प्रजा, ब्राह्मण और देवगण भी उत्कट कामना करने लगे कि वे पृथ्वी पर राज्य करें। उनके अनुपम व्यक्तित्व — उनकी विशालता, बल, तेज, कीर्ति, प्रभावशाली गरिमा और ऊर्जा — पर विचार करके उनके पिता राजा नाभि ने उन्हें ऋषभ, अर्थात् “सर्वश्रेष्ठ,” नाम दिया।

तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन चौजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥ २ ॥

tasya ha vā itthaṁ varṣmaṇā varīyasā bṛhac-chlokena caujasā balena śriyā yaśasā vīrya-śauryābhyāṁ ca pitā ṛṣabha itīdaṁ nāma cakāra

अर्थ: उनकी उन्नत देह, श्रेष्ठ श्लोकों में गाई जाने वाली कीर्ति, ऊर्जा, बल, ऐश्वर्य, यश, वीर्य और शौर्य पर विचार करके उनके पिता ने उन्हें ऋषभ — “सर्वश्रेष्ठ” — नाम दिया। (स्कन्ध 5, अध्याय 4, श्लोक 2)

भगवान् जिन्होंने वर्षा को आज्ञा दी

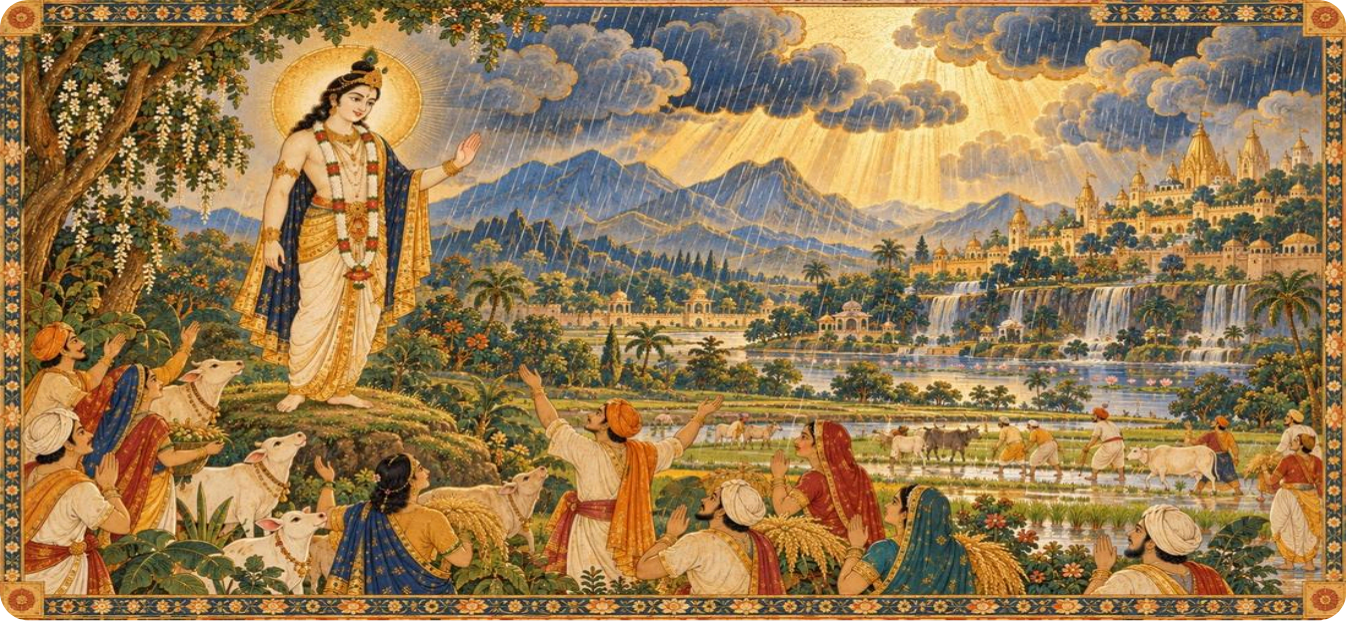
शिशु की महानता चुनौती से रहित न रही। उनसे ईर्ष्या करके देवराज इन्द्र ने उनकी भूमि में वर्षा रोक दी। किन्तु योगेश्वर से कुछ भी छिपा नहीं रहता। इन्द्र के इस कृत्य को जानकर ऋषभदेव केवल हँसे — और अपने ही दिव्य सामर्थ्य, अपनी योगमाया से, उन्होंने अपने समस्त राज्य पर, जो तब अजनाभ नाम से जाना जाता था, प्रचुर वर्षा बरसा दी। मेघों के अधिपति का दर्प क्रोध से नहीं, अपितु एक सहज मुस्कान से उत्तरित हुआ, क्योंकि जो समस्त लोकों का पालन करते हैं उन्हें जल के लिए बादलों से याचना की आवश्यकता नहीं।

यस्य हीन्द्रः स्पर्धमानो भगवान् वर्षे न ववर्ष तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ॥ ३ ॥

yasya hīndraḥ spardhamāno bhagavān varṣe na vavarṣa tad avadhārya bhagavān ṛṣabhadevo yogeśvaraḥ prahasyātma-yogamāyayā sva-varṣam ajanābhaṁ nāmābhyavarṣat

अर्थ: जब बलशाली इन्द्र ने उनसे स्पर्धा करके उनकी भूमि में वर्षा रोक दी, तब योगेश्वर भगवान् ऋषभदेव ने इसे समझ लिया, और हँसते हुए, अपनी ही योगमाया से उन्होंने अपने राज्य में, जो अजनाभ नाम से जाना जाता था, वर्षा बरसा दी। (स्कन्ध 5, अध्याय 4, श्लोक 3)

इस प्रसंग के नाटकीय धरातल के नीचे अध्याय का गहनतम भावार्थ छिपा है। इन्द्र वर्षा के केवल नियुक्त अधिकारी हैं; ऋषभदेव स्वयं यज्ञपति हैं, साक्षात् यज्ञेश, जिनकी तुष्टि के लिए ही प्रत्येक आहुति और प्रत्येक वर्षा अन्ततः होती है। वे स्वयं स्रोत हैं, किसी के आश्रित नहीं, इसलिए उन्हें कभी याचना, सौदेबाज़ी अथवा प्रतिशोध की आवश्यकता नहीं पड़ी — जैसे ही इन्द्र का दायित्व डगमगाया, उन्होंने बिना माँगे ही अपनी भूमि को आवश्यक वर्षा प्रदान कर दी। यही सत्य प्रत्येक युग में विद्यमान है: जब ऋषभदेव के समय के विस्तृत यज्ञ, हमारे समय की भाँति, दुष्कर हो जाते हैं, तब भी वही यज्ञपति संकीर्तन — भगवन्नाम के सामूहिक कीर्तन — के सरल माध्यम से सुलभ रहते हैं। ईर्ष्या का उत्तर परमेश्वर क्रोध से नहीं, मुस्कान से देते हैं — क्योंकि जिनके पास सब कुछ पहले से है, उन्हें न कुछ सिद्ध करना है, न किसी को दण्ड देना है। (श्लोक ३)



इन्द्र की ईर्ष्या से अविचलित, योगेश्वर भगवान् ऋषभदेव मुस्कुराते हैं और अपने ही दिव्य सामर्थ्य से अपने अजनाभ राज्य पर प्रचुर वर्षा बरसा देते हैं (श्लोक 3)।

एक पिता का हर्ष और वैराग्य

राजा नाभि के लिए ऐसे पुत्र का जन्म अपरिमेय हर्ष था। जिस उत्तराधिकारी के लिए उन्होंने प्रार्थना की थी उससे धन्य होकर, वे स्नेह से अभिभूत हो गए, उस दिव्य शिशु को प्रेम से पुचकारते और गद्गद वाणी में “मेरे बच्चे, मेरे प्यारे” पुकारते — उनका प्रेमपूर्ण हृदय भगवान् की अपनी ही माया से ऐसा मुग्ध था कि वे उन परम पुरातन पुरुष को, जिन्होंने स्वेच्छा से मनुष्य-रूप धारण किया था, केवल अपना प्रिय पुत्र ही देख रहे थे। समय आने पर, यह जानकर कि उनका पुत्र मन्त्रियों और नागरिकों दोनों को कितना प्रिय है, नाभि ने ऋषभदेव को धर्म की रक्षा के लिए सिंहासन पर अभिषिक्त किया और उन्हें ब्राह्मणों के मार्गदर्शन में सौंप दिया। तब उस धर्मनिष्ठ राजा ने, अपना कर्तव्य पूर्ण करके, रानी मेरुदेवी के साथ विशाला — बदरिकाश्रम — के पावन आश्रम को प्रस्थान किया, जहाँ भगवान् वासुदेव की नर और नारायण के रूप में कोमल तप और गहन ध्यान से आराधना करते हुए, वे समय आने पर भगवान् में एकत्व को प्राप्त हुए।

विदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ॥ ५ ॥

viditānurāgam āpaura-prakṛti jana-pado rājā nābhir ātmajaṁ samaya-setu-rakṣāyām abhiṣicya brāhmaṇeṣūpanidhāya saha merudevyā viśālāyām prasanna-nipuṇena tapasā samādhi-yogena nara-nārāyaṇākhyam bhagavantam vāsudevam upāsinaḥ kālena tan-mahimānam avāpa

अर्थ: अपने पुत्र को नागरिकों और प्रजा का प्रिय जानकर, राजा नाभि ने उन्हें धर्म-मर्यादा की रक्षा के लिए सिंहासन पर अभिषिक्त किया, ब्राह्मणों को सौंप दिया, और रानी मेरुदेवी के साथ विशाला (बदरिकाश्रम) को प्रस्थान करके, कृपापूर्ण तप और गहन ध्यान से भगवान् वासुदेव की नर-नारायण-रूप में आराधना करते हुए, समय आने पर उनकी दिव्य स्थिति को प्राप्त हुए। (स्कन्ध 5, अध्याय 4, श्लोक 5)



अपना राजकीय कर्तव्य पूर्ण करके, राजा नाभि रानी मेरुदेवी के साथ बदरिकाश्रम के पावन आश्रम को प्रस्थान करते हैं, और शान्त तप एवं ध्यान में भगवान् नर-नारायण की आराधना करते हैं (श्लोक 4-5)।

राजा नाभि की स्तुति

नाभि की भक्ति इतनी असाधारण थी कि लोग दो प्रसिद्ध श्लोकों में उनकी महिमा गाने लगे। वे पूछते हैं, कौन-सा अन्य मनुष्य राजर्षि नाभि के कर्मों की समता कर सकता है — क्योंकि उनके शुद्ध और पवित्र कर्मों से आकृष्ट होकर स्वयं भगवान् ने उनका पुत्र बनना स्वीकार किया? और नाभि से बढ़कर ब्राह्मणों का प्रेमी कहाँ मिलेगा, जिनकी उदार यज्ञ-दक्षिणा से प्रसन्न होकर ब्राह्मणों ने अपने पवित्र मन्त्रों से साक्षात् यज्ञपति भगवान् को अपने नेत्रों के समक्ष प्रकट कर दिया?

को नु तत्कर्म राजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान् ।

अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥ ६ ॥

ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मङ्गलपूजिताः ।

यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥ ७ ॥

ko nu tat karma rājarṣer nābher anv ācaret pumān apatyatām agād yasya hariḥ śuddhena karmaṇā brahmaṇyo 'nyaḥ kuto nābher viprā maṅgala-pūjitāḥ yasya barhiṣi yajñeśaṁ darśayām āsur ojasā

अर्थ: कौन मनुष्य राजर्षि नाभि के कर्मों का अनुकरण कर सकता है, जिनके शुद्ध कर्मों से आकृष्ट होकर श्रीहरि उनके पुत्र बने? और नाभि से बढ़कर ब्राह्मणों का भक्त कहाँ हो सकता है, जिनकी पूजा से सम्मानित ब्राह्मणों ने अपने मन्त्रों के बल से यज्ञपति भगवान् को यज्ञ में प्रकट कर दिया? (स्कन्ध 5, अध्याय 4, श्लोक 6-7)

सौ पुत्र और भरत को भूमे

भगवान् ऋषभदेव ने, अपने राज्य को धर्ममय कर्म का क्षेत्र जानते हुए, पहले संसार को अपने ही उदाहरण से यह दिखाया कि एक विद्यार्थी को अपने गुरु के आश्रम में किस प्रकार निवास करना चाहिए। तब, अपने गुरुओं की अनुमति से गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करके, और गृहस्थ के पावन कर्तव्यों की शिक्षा देते हुए, उन्होंने इन्द्र द्वारा प्रदत्त जयन्ती से विवाह किया और उसके द्वारा सौ पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें प्रत्येक उन्हीं के सदृश था। इनमें ज्येष्ठ और सर्वाधिक गुणवान् भरत थे, एक महान् योगी — और इन्हीं भरत के नाम पर इस भूमि का नाम भारतवर्ष है।

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥ ९ ॥

yeṣāṁ khalu mahā-yogī bharato jyeṣṭhaḥ śreṣṭha-guṇa āsīd yenedaṁ varṣaṁ bhāratam iti vyapadiśanti

अर्थ: इन पुत्रों में ज्येष्ठ भरत थे, सर्वश्रेष्ठ गुणों से युक्त एक महान् योगी, जिनके नाम पर यह भूमि भारतवर्ष कहलाती है। (स्कन्ध 5, अध्याय 4, श्लोक 9)

पुत्रों में से नौ — कुशवर्त, इलावर्त, ब्रह्मवर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट — शेष नब्बे के अग्रणी थे। नौ अन्य — कवि, हवि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन — प्रख्यात भक्त हुए जिन्होंने संसार को भगवद्भक्तों का आचरण सिखाया; उनकी पावन कथा आगे, एकादश स्कन्ध में, वसुदेव और नारद के संवाद के रूप में कही गई है। शेष इक्यासी पुत्र, जो और भी छोटे थे और अपने पिता में गहराई से अनुरक्त थे, विनम्र, वेदों में निष्णात और सदैव यज्ञ में संलग्न हुए, और अपने शुद्ध आचरण से ब्राह्मण माने गए।



भगवान् ऋषभदेव अपने सौ श्रेष्ठ पुत्रों के साथ, जिनमें ज्येष्ठ महान् योगी भरत के नाम पर इस भूमि का नाम भारतवर्ष पड़ा (श्लोक 8-9)।

भगवान् जिन्होंने उदाहरण से शिक्षा दी

यहाँ अध्याय ऋषभदेव के शासन के गहनतम सत्य को उद्धाटित करने के लिए रुकता है। वे स्वयं भगवान् थे — पूर्णतया स्वतन्त्र, प्रत्येक अनर्थ से नित्य मुक्त, सदा परम आनन्द में निमग्न। उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता न थी। और फिर भी, वे प्रत्येक रीति से एक साधारण मनुष्य के समान आचरण करते रहे, सांसारिक कर्तव्यों का पालन करते हुए, ताकि वे अपने ही आचरण से उन पावन कर्तव्यों की शिक्षा दे सकें जिन्हें लोग समय के साथ भूल चुके थे। सदैव समभाव, शान्त, संयत, मैत्रीपूर्ण और करुणा से पूर्ण रहते हुए, उन्होंने अपनी प्रजा को एक शुभ गृहस्थ-जीवन में स्थापित किया — ऐसा जिसमें धर्म, ईमानदार जीविका, सुयश, सन्तान, और इन्द्रियों के भोग तक अन्ततः मोक्ष की ओर ले जाएँ।

भगवानृषभसंज्ञ आत्मतन्त्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरम्परः केवलानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारम्भाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदां सम उपशान्तो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशः प्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥ १४ ॥

bhagavān ṛṣabha-saṁjña ātma-tantraḥ svayaṁ nitya-nivṛttānārtha-paramparaḥ kevalānandānubhava īśvara eva viparītavat karmāṇy ārabhamāṇaḥ kālenānugataṁ dharmam ācaraṇenopaśikṣayann atad-vidāṁ sama upaśānto maitraḥ kāruṇiko dharmārtha-yaśaḥ-prajānandāmṛtāvarodhena gr̥heṣu lokam niyamayat

अर्थ: ऋषभ नामधारी भगवान् — स्वाधीन, समस्त भौतिक क्लेशों की परम्परा से नित्य परे, अमिश्रित आनन्द के साक्षात् अनुभव-स्वरूप, परम नियन्ता — फिर भी एक साधारण प्राणी के समान कर्मों में प्रवृत्त हुए, अपने आचरण से समय के साथ विस्मृत हुए धर्मों की शिक्षा देते हुए; समभाव, शान्त, मैत्रीपूर्ण और करुणामय रहते हुए, उन्होंने प्रजा को धर्म, ईमानदार अर्थ, यश, सन्तान और मोक्ष के अमृत की ओर गृहस्थ-जीवन में नियमित किया। (स्कन्ध 5, अध्याय 4, श्लोक 14)

उन्होंने ऐसा क्यों किया, इसका कारण अगले ही श्लोक में दिया गया है:

यद्यच्छीर्ष्यचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥ १५ ॥

yad yac chīrṣṇy ācaritaṁ tat tad anuvartate lokah

अर्थ: शीर्षस्थ पुरुष जो भी आचरण करता है, संसार उसी का अनुसरण करता है। (स्कन्ध 5, अध्याय 4, श्लोक 15)

यद्यपि वे स्वयं वेदों के अन्तरतम रहस्यों को, समस्त धर्मों के सार को जानते थे, तथापि उन्होंने अपनी प्रजा का शासन साधारण रीति से किया, ब्राह्मणों की सम्मति का अनुसरण करते हुए; और उन्होंने विभिन्न देवताओं का सम्मान करने के लिए, सौ-सौ बार सम्पन्न किए गए, समस्त आवश्यक सामग्री से युक्त, प्रत्येक प्रकार के यज्ञ से भगवान् की आराधना की। उनके शासन में वह भूमि ऐसी समृद्ध हुई जिसकी कल्पना भी कठिन है: किसी भी व्यक्ति ने कभी किसी दूसरे की वस्तु की कामना नहीं की, न ही अपने लिए वह चाहा जो उसका नहीं था — क्योंकि सबके हृदय इसके स्थान पर अपने शासक के प्रति उत्तरोत्तर गहरे होते प्रेम से भरे थे।

भगवत्तर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥ १८ ॥

bhagavataṣabheṇa parirakṣyamāṇa etasmin varṣe na kaścana puruṣo vāñchaty avidyamānam ivātmano 'nyasmāt kathañcana kimapi karhicid avekṣate bhartary anusavanam vijṛmbhita-snehātiśayam antareṇa

अर्थ: भगवान् ऋषभ द्वारा रक्षित इस भूमि में, किसी ने भी कभी किसी दूसरे से अपने लिए कुछ नहीं चाहा — जैसे कोई किसी अविद्यमान वस्तु को न चाहे — और न ही किसी ने कभी दूसरे की सम्पत्ति पर लोभ की दृष्टि डाली; प्रत्येक हृदय में जो एकमात्र वस्तु सदा बढ़ती रही वह थी अपने शासक के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ता प्रेम। (स्कन्ध 5, अध्याय 4, श्लोक 18)

ब्रह्मावर्त की सभा

अन्ततः, अपने राज्य का भ्रमण करते हुए, भगवान् ऋषभदेव ब्रह्मावर्त पहुँचे। वहाँ, श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों की एक सभा में और अपनी प्रजा के सुनते हुए, वे अपने ही पुत्रों की ओर मुड़े — जो यद्यपि पहले से ही अपनी विनम्रता और भक्ति से संयत और परिष्कृत थे, फिर भी सबके कल्याण के लिए जिन्हें वे शिक्षा देना चाहते थे — और बोलना आरम्भ किया। भगवान् ऋषभदेव का अपने पुत्रों को दिया गया वही उपदेश आगे आने वाले अध्याय का पावन विषय है।

स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानवहितात्मनः
प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥ १९ ॥

sa kadācid aṭamāno bhagavān ṛṣabho brahmāvarta-gato brahmarṣi-pravara-sabhāyām prajānām niśāmayantīnām ātmajān avahitātmanaḥ praśraya-praṇaya-bhara-suyantritān apy upaśikṣayann iti hovāca

अर्थ: एक बार, भ्रमण करते हुए, भगवान् ऋषभ ब्रह्मावर्त आए, और श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों की सभा में, अपनी प्रजा के सुनते हुए, उन्होंने अपने सावधान पुत्रों को — जो अपनी विनम्रता और प्रेमपूर्ण भक्ति से पहले से ही संयत थे — शिक्षा देने के लिए सम्बोधित किया, और इस प्रकार बोले। (स्कन्ध 5, अध्याय 4, श्लोक 19)



ब्रह्मावर्त में ब्रह्मर्षियों की एक सभा में, भगवान् ऋषभदेव अपने भक्त पुत्रों की ओर मुड़कर उन्हें शिक्षा देते हैं — यह उनके महान् उपदेश की भूमिका है (श्लोक 18-19)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

परम भगवान् आवश्यकता से नहीं, शिक्षा देने के लिए कर्म करते हैं। ऋषभदेव स्वयं भगवान् हैं — आत्म-निर्भर, सदा आनन्दमय, किसी वस्तु की अपेक्षा से रहित। फिर भी वे प्रत्येक साधारण कर्तव्य का पालन करते हैं, “एक साधारण प्राणी के समान कर्मों में प्रवृत्त होते हुए,” केवल इसलिए कि संसार को वह धर्म सिखा सकें जिसे लोग भूल चुके थे। उनका समस्त जीवन करुणावश दी गई एक शिक्षा है।

नेता वही मार्ग बनाते हैं जिसका संसार अनुसरण करता है। “संसार वही करता है जो श्रेष्ठ पुरुष करते हैं।” अध्याय हमें स्मरण कराता है कि प्रभावशाली स्थान पर बैठे लोग अनगिनत अन्यो के आचरण को गढ़ते हैं। ऋषभदेव का निर्दोष उदाहरण ही आदर्श है: नेतृत्व सेवा-रूप में, और महानता उत्तरदायित्व-रूप में।

एक आदर्श समाज लोभ से नहीं, प्रेम से बँधा होता है। ऋषभदेव के शासन में किसी ने दूसरे की सम्पत्ति की कामना नहीं की; जो एकमात्र वस्तु बढ़ती रही वह शासक के प्रति प्रेम था। जहाँ हृदय भक्ति से भरे हों, वहाँ ईर्ष्या और लोभ के रहने का कोई स्थान ही नहीं।

दिव्य शक्ति को क्रोध के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं। जब इन्द्र ने ईर्ष्यावश वर्षा रोकी, तब योगेश्वर ने क्रोध से नहीं, अपितु मुस्कान से उत्तर दिया, अपने ही सामर्थ्य से चुपचाप वर्षा लौटा दी। सच्चा बल शान्त होता है, कभी व्यग्र नहीं, कभी प्रतिशोधी नहीं।

अपना कर्तव्य करो, फिर पूर्णतया भगवान् की ओर मुड़ जाओ। राजा नाभि, एक योग्य पुत्र का पालन-पोषण करके और अपने राज्य को सुरक्षित करके, अपनी रानी के साथ बदरिकाश्रम को प्रस्थान कर गए ताकि ध्यान में भगवान् की आराधना करते हुए उन्हें प्राप्त कर सकें। उनका जीवन उस पावन क्रम का आदर्श है: अपने उत्तरदायित्वों को निष्ठा से पूर्ण करो, फिर अपने शेष दिन पूर्णतया भगवान् को दे दो।

एक भाक्तेपूण चिन्तन

इस विचार में एक शान्त विस्मय है कि भगवान् चलना सीखते हैं, एक स्नेही पिता द्वारा गोद में लिए और “मेरे प्यारे” पुकारे जाते हैं, एक राज्य का शासन करते हैं, विवाह करते हैं, सन्तान का पालन करते हैं — और यह सब इसलिए नहीं कि उन्हें करना ही है, अपितु इसलिए कि हमें इसे उचित रीति से होते देखना आवश्यक है। ऋषभदेव संसार के कर्तव्यों से बचने के लिए अवतरित नहीं हुए, अपितु उन्हें पवित्र करने के लिए। वे हमें दिखाते हैं कि साधारण जीवन — कर्म, परिवार, सेवा, आराधना — पवित्रता के लिए बाधा नहीं, अपितु एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ पवित्रता विकसित हो सकती है। और उनका शासन उस चित्र को अंकित करता है जिसके लिए हमारे अशान्त हृदय तरसते हैं: एक समस्त प्रजा ईर्ष्या से मुक्त, उस वस्तु की कामना न करती हुई जो उसकी नहीं, अपितु अपने हृदयों को प्रेम से भरे हुए। वह दर्शन राष्ट्रों के सुधार से नहीं, अपितु एक अकेले हृदय के सुधार से आरम्भ होता है। जब भगवान् के प्रति प्रेम हममें जड़ पकड़ लेता है, तब यह अन्तहीन लालसा स्वयं ही शान्त हो जाती है। हम कम चाहने और अधिक प्रेम करने लगते हैं। वही भगवान् जिन्होंने अजनाभ पर परम शान्ति से राज्य किया, आज भी हमारे भीतर राज्य करने का प्रस्ताव देते हैं — यदि हम उनकी उपस्थिति के लिए स्थान बना सकें।

एक दैनिक भक्ति-साधना

आज एक ऐसा कर्तव्य चुनिए जिससे आप बचना चाहते हों — कार्यस्थल का कोई काम, परिवार के प्रति कोई कर्तव्य, कोई दायित्व जिसे आप टालते आ रहे हों — और उसे सावधानी और प्रसन्नता से करते हुए, भीतर ही भीतर भगवान् को अर्पित कर दीजिए, ऋषभदेव के अनुकरण में, जिन्होंने दूसरों के हित के लिए प्रत्येक साधारण कर्म को उत्तम रीति से किया। काम करते हुए, एक ही विचार आपके साथ रहे: मैं यह पुरस्कार के लिए नहीं, अपितु एक अर्पण के रूप में करता हूँ। इस लघु रीति से, उन भगवान् के समान जिन्होंने अपने ही उदाहरण से शिक्षा दी, आप एक साधारण कर्म को भक्ति का कर्म बना देते हैं — और धीरे-धीरे हृदय को अपने दैनिक कर्तव्यों में ही भगवान् को खोजने के लिए प्रशिक्षित करते हैं।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का चतुर्थ अध्याय भगवान् ऋषभदेव की महिमा को अनावृत करता है। भगवत्ता के अमिट चिह्नों के साथ जन्मे, वे ऐसी गरिमा में बढ़े कि देव और मनुष्य समान रूप से चाहने लगे कि वे राज्य करें; उनके पिता ने उन्हें “सर्वश्रेष्ठ” नाम दिया। उन्होंने इन्द्र की ईर्ष्या को एक मुस्कान और वर्षा से शमित किया, राजा नाभि को एक प्रिय पुत्र-रूप में आनन्दित किया, और — जब नाभि भगवान् को ध्यान में खोजने बदरिकाश्रम चले गए — तब उस भूमि पर परम धर्म से राज्य किया। उन्होंने सौ श्रेष्ठ पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें प्रमुख भरत के नाम पर इस भूमि का नाम पड़ा। यद्यपि वे परम भगवान् थे, किसी वस्तु की अपेक्षा से रहित, तथापि वे एक साधारण मनुष्य के समान जीवन जिये और श्रम किया ताकि संसार को उसके विस्मृत कर्तव्य सिखा सकें, एक ऐसे राज्य पर शासन करते हुए जो प्रेम से इतना भरा था कि किसी हृदय ने दूसरे की वस्तु का लोभ नहीं किया। और ब्रह्मावर्त में, ऋषियों के समक्ष अपने पुत्रों को एकत्र करके, वे वह महान् उपदेश देने के लिए उद्यत हुए जिसे पंचम स्कन्ध अब उद्घाटित करेगा। उनका जीवन हमें एक देदीप्यमान शिक्षा देता है: कि सर्वोच्च दिव्यता स्वयं को सबसे विनम्र, सबसे निष्ठावान सेवा के रूप में अभिव्यक्त करती है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), पंचम स्कन्ध, चतुर्थ अध्याय, “The sovereignty of Rsabha,” पृष्ठ 451–453।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-4-the-divine-glory-of-lord-rsabhadeva-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट